# थेरगाथा में प्रकृति चित्रणः एक अनुषीलन

*डॉ॰ दीपंकर लामा*
*एसोसिएट प्रोफेसर–सह–अध्यक्ष,*
*तिब्बती अध्ययन विभाग,*
*नव नालन्दा महाविहार, नालंदा,*
*समविष्वविद्यालय, (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)*
*नालन्दा, बिहार।*

सुत्तपिटक के पाँचवें ग्रंथ खुद्दक निकाय के अंतर्गत् 15 ग्रंथों का संकलन किया गया है, जिसमें नौवां ग्रंथ थेरगाथा है। जिन स्थविरों की वाणी में एक गाथा है, उनके संग्रह 'एकक निपात' में है तथा जिन स्थविरों की वाणी में साठ गाथाएँ हैं उनका संग्रह 'सट्ठिनिपात' में है। सभी गाथाएँ प्रेरणापूर्ण बातों से भरी पड़ी हैं। समस्त गाथाओं का बल इन्हीं बातों पर है कि संसार दुःखपूर्ण है, इससे विरक्त हो विमुक्ति का लाभ करना मनुष्य का परम लक्ष्य है।[1] इस ग्रंथ में 264 भिक्षुओं के उद्‌गार 1279 गाथाओं में संकलित हैं, जो 21 निपातों में विभक्त है। इस ग्रंथ में भिक्षुओं के अंतर्जगत् के अनुभवों की बहुलता है।[2]

समस्त बौद्ध साहित्य में थेरगाथा का अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ बौद्ध साहित्य मुख्यतः बौद्ध दर्षन तथा संघीय जीवन को जीने के नियमों का व्यापक रूप से वर्णन करता है वहाँ यह कभी शुष्क सा भी प्रतीत होता है। इसमें थेरों द्वारा काव्यमय भाषा में अपने आन्तरिक अनुभवों का वर्णन किया गया है। वनों, पर्वतों और वृक्षों के मूल में, कन्दराओं में, गुफाओं में ध्यानरत् भिक्षुओं के मन में जो–जो अनुभूतियाँ हुई हैं, उसका वर्णन अत्यंत ही काव्यमय शैली में किया गया है। थेरगाथा में जिन स्थविरों की चर्चा की गयी है, वहाँ उन थेरों ने प्रकृति के बदलते स्वरूप को देखा है, उसके सौंदर्य का पान किया है तथा प्रकृति के गोद में बैठकर उन्होंने साधना भी की है।

थेरगाथा में प्रकृति के माध्यम से साधक एवं भिक्षुओं को साधना में जैसा बल मिला है वह शायद ही किसी अन्य ग्रंथ में मिलता है। शांत रस की तो यहाँ प्रचुरता है ही, कवि ने जंगल, पहाड़, बादल, मोर तथा वर्षा के द्वारा साधक भिक्षुओं की साधना को दृढ़ से दृढ़तर करने का भी प्रयास किया है। वे जंगल में एकांतवास करते हुए भी घबराते नहीं हैं। वे वास्तविकता को पहचानने की कोषिष करते हैं। यही कारण है कि वर्षा की बून्दों में भीगते हुए भी भिक्षु यह कहे बिना नहीं रहता कि ''बरसो देव यथा सुख बरसो। मेरी कुटिया छायी हुई है।''

थेर गाथा में जहाँ प्रकृति को विषेष रूप से चित्रित किया गया है वहीं दूसरी ओर शांत रस का भी वर्णन थेरगाथा में अतुलनीय है। इतना ही नहीं जहाँ इस ग्रंथ में मनोरंजन, आह्लाद तथा प्रकृति प्रेम का प्रगाढ़ संग्रह है, वहीं दूसरी ओर इस क्षण भंगुर शरीर के प्रति आकर्षण के कारणों को भी परिलक्षित किया गया है।

वर्षाऋतु में काले–काले बादल आसमान में छा जाते हैं। महीनों से तप्त धरती को ये बादल अमृत की रस धारा से आत्मचित करते हैं। मोर इत्यादि अनेक प्रकार के पक्षी इस ऋतु में नाचते हैं, गाते हैं एवं आनन्द मनाते हैं। सभी पेड़ पौधो में नया जीवन छा जाता है और वातावरण सुरभित हो उठता है। सारे वातावरण में एक प्रकार की शान्ति आलाद और प्रफुल्ता का आती है। वर्षा हो जाने के उपरांत वायुमंडल से धूल इत्यादि धरती पर गिर जाती है और आसमान चमकने लगता है। चांद भी अपनी पूर्ण ज्योति शमा के साथ आकाष में चमकता है।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह ऋतु बड़ा ही सुखदायी है और थेरों ने इस ऋतु में पायी जानेवाली अनेक वस्तुओं से अपने अनुभूत अत्यधिक सुख की तुलना की है। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अरण्य में एकान्त स्थान पर रहकर साधना करने की सलाह दी थी। भिक्षुओं ने इसका पूर्णतः पालन किया है।[4] बौद्ध धर्म में अरण्य का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। क्योंकि अरण्य में होते हुए भी कड़कती हुई बिजली, गरजते हुए बादल आदि थेरों के चित्त को दहलाता नहीं, डराता नहीं। क्योंकि इन्होंने अपने अन्दर की तृष्णा को नष्ट कर चुका है। इनके पास भय नहीं होता है। इसलिए तो सुभूति थेर ने कहा है कि– छनना में कुटिका सुखा निवात।, वस्सत देव यथा सुख, चित्तं में सुसमहित विमुतं, आतापीं विहरामी, वस्सादेवा ति।[5] ध्यान भावना करने वाले भिक्षु प्रकृति से प्रेरणा पाते हैं यदि प्रकृति में उन्हें उत्साह और उल्लास दिखाई पड़ता है तो उनका मन भी सुन्दर, स्वस्थ्य एवं अप्रमादी होकर ध्यान भावना करने में समर्थ होता है। उसे प्रेरणा मिलती है अत्यन्त पवित्र, कुषल, उत्तम निर्वाण का साक्षात्कार होता है। वर्षा काल में जब सुन्दर मोर काले–काले मेघों को देखकर संगीतमयी वाणी में बोलता है विस्तृत पृथ्वी हरी घास से परिपूर्ण होती है, सम्पूर्ण पृथ्वी ही सादवल की तरह लगती है। उस समय एक ऐसी मोहक रमणीयता सारे वातावरण में छा जाती है, जिससे भिक्षु ध्यान करने में तल्लीन हो जाते हैं। जिससे भिक्षु ध्यान करने में तल्लीन हो जाते है। इसी बात को चूलक नामक थेर अपनी गाथाओं में इस प्रकार कहते हैं कि ''सुन्दर षिखा वाले सुन्दर चोंच वाले, सुन्दर नील ग्रीवा वाले, सुन्दर मुख वाले, मधुर गीत इस महापृथ्वी पर सुन्दर घास उगी है, जल फैला गया है और आकाष बादलों से भर गया है। जो सम्यक् रूप से घर त्याग कर बुद्ध शासन में आकर प्रयत्न है, उसके ध्यान करने के लिये यह समुचित समय है। सूक्ष्माति सूक्ष्म, निपुण, दुर्दर्षनीय, उत्तम (निर्वाण) पद को स्पर्ष करें।''[6]

थेरगाथा में वर्षा ऋतु के विभिन्न रूपों का भी वर्णन मिलता है। सुभूति थेर ने वर्षा ऋतु के माध्यम से यह कहने की कोषिष की है कि यदि हम तृष्णा की वारिस काम, क्रोध, लोभ आदि की वारिस हो भी तो उसका कुछ नहीं विगाड़ सकता क्योंकि उसने अपने मन को उसी तरह लिया है जिस तरह कोई अपनी कुटिया को छ लेता है। इस अर्घपूर्ण उपमा से उन्होंने अपनी विमुक्ति सुख की बात कही है। अपने मन की उपमा छाई हुई कुटी से देकर थेर सुभूति ने औचित्य का पालन किया है।[7]

महाकोलित ने अपनी विमुक्ति सुख को प्रकट करते हुए गाथा के माध्यम से निम्नलिखित बातें कही हैं– ''जो उपरान्त है, पापों में रत नहीं है, ज्ञान पूर्वक बोलता है, अभिमान रहित है, वह उसी प्रकार पाप धर्मों को हिला देता है, जिस प्रकार हवा पेड़ के सुख पत्ते को।'' इसमें

उपरान्तों की उपमा हवा से दी गई है। और पाप धर्मों का सुख पत्ते से। जैसे सूखा पत्ता थोड़ी सी हवा चलने से वृक्ष से गिर जाता है उसी प्रकार पाप धर्मों उनके विनष्ट हो जाते हैं। जिन्होंने लोभ, द्वेष, मोह पर विजय प्राप्त कर विमुक्ति सुख का आस्वाद लिया है। यह भी बड़ी ही सुन्दर उपमा है और स्थविर की भाव को बड़े ही हृदय ग्राही ढंग से स्पष्ट करती है।[8]

वनवृक्ष नामक थेर वनों के प्रेमी थे। नीली घटाओं को देखकर या पर्वतों को देखकर उनका ध्यान लग जाता था। इसलिए उन्हें सुन्दर शीतल, स्वच्छ जलाषयों से युक्त इन्द्रगोपों सेवाच्छादित जो पर्वत थे, उन्हें प्रिय थे। पर्वतों का प्रिय होना इस बात को संकेतित करता है कि वनवच्छ थेर द्वारा काम, दोष और मोह की अग्नि समाप्त होने से एक प्रकार की शीतलता आ गई थी और उसी शीतलता के कारण, वे स्वच्छ एवं शीतल पर्वत के गुण स्वयं में देखते हैं।[9]

चित्तक थेर ने मोर की उपमा वैसे व्यक्ति से दी है जो सोये हुए योगी को जगाता है। वन प्रांत में रहनेवाला मोर आसमान में उमड़ती घटा को देखकर नाचने लगता है, मधुर गीत गाने लगता है वैसे योगियों को जगाते है जिन्हें तन्द्रा आ गयी है यहाँ भी योगी को जगाने के लिए मोर को ही चुना गया है, क्योंकि मोर का हृदय वर्षा ऋतृ में प्राकृति दृष्य को देखकर आनन्दित हो उठता है।[10]

अरण्यावास की दुष्करता स्वतः सिद्ध हो वर्षा काल में और भी यह दुस्कर हो जाता है। जब अनेक प्रकार के मक्खी और मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं लेकिन इससे हार मानना नहीं है। इसका डटकर मुकाबला करना है, जैसे भीषण को गहरतीरिय स्थविर ने अपनी गाथा में कहा है कि अरण्य में, महावन में मक्खियों तथा मच्छरों का स्पर्ष पाने पर संग्राम में आगे रहने वाले हाथी की तरह रहो, उसकी तरह सहन करना सीखो। ठीक इसी प्रकार से आध्यत्मिक शक्ति एवं धैर्य की उपमा हाथी से किया है। वर्षा ऋतृ में बिजली की गड़गड़ाहट किसी भी भिक्षु बाधा नही बनती है। जंगल में बहुत सारी हवाएं, आंधी, तुफान आते हैं। वे भिक्षु को सुख पूर्वक आसानी से ध्यान नहीं करने देते हैं। लेकिन स्थित प्रज्ञ और साक्वान भिक्षु एक आध्यात्मिक कवच रूप में काम करता है, जिस पर कठिनाईयां उस पर वार नहीं कर सकती।[11]

रामपेय्य स्थविर ने मार की उपमा गिलहरी से दी है। उपमा बड़ी ही सार्थक है। वस्तुतः भिक्षु के सम्मुख मार एक छोटी गिलहरी के समान है जो उसे कुछ भी नहीं कर सकता। उसभ स्थविर ने लहलहाती हुई प्रकृति को देखकर स्थविर के मन में इच्छा होती है कि जैसे प्रकृति अपनी वृद्धि कर रही है। वैसे ही वह भी आध्यात्मिक  वृद्धि करें। ऐसा सोच कर संकल्प कर लेते है। यह भ्झी उपमा बहुत ही सटीक एवं उचित है। वर्षा से शीतल होकर वृक्ष को एवं पर्वतों पर लहलाहाते हुए देखते है तो भिक्षुओं के मन में स्फूर्ति होती है। ठिक उसी प्रकार जिस प्रकार छाये हुए घर में वर्षा का पानी प्रवेष नहीं करता है उसी प्रकार ध्यान भावना से रहित चित्त में राग प्रवेष करता है। और ध्यान भावना से अभ्यस्त चित्त में राग, द्वेष, मोह आदि प्रवेष नहीं करता है।[12]

अरण्य में ध्यान भावना करते हुए सिवक स्थविर ने अपने चित्त की उपमा पर्वत से करते हैं। जैसे पर्वत स्थिर रहता है, अविचलित रहता है। रंजनीय वस्तुओं से विरक्त रहता है और द्वेषनीय वस्तुओं से दुष्ट नहीं होता उसी प्रकार सिवक सथविर का भी चित्त इन सबों से परे रहकर स्थिर है।[13]

अरण्यवास से ही भिक्षु को सरकण्डों से बने अस्थायी घर का ज्ञान होता है, जैसे सरकण्डों के बने घर को हाथी हिला देता है उसी प्रकार जो भिक्षु धर्म विनय में अप्रमद होकर विहार करता है। वह जन्म रूपी संसार को त्याग कर दुःख का अन्त करेगा। यहाँ पर अप्रमादी भिक्षु की उपमा हाथी से दी गयी है और दुख की उपमा सरण्डों से।

सप्पक स्थविर ने भी प्रकृति से प्रेरणा पायी है और उन्होंने अपनी एकान्त प्रियता का वर्णन किया है तेकिच्छकारि स्थविर तो मार के अनेक प्रकार के कष्टों के बारे में कहते है कि खुले आकाष में रहकर भी शीत का असर नहीं पड़ता मुझे हेमन्त राते परेषान नहीं कर सकती और चार ब्रह्मविहारों का अनुभव प्राप्त करता है।[14]

महानाम स्थविर ने कहा है कि जैसे भिक्षु शील से च्युत होने पर वेसे ही सद्धर्म से गिर जाता हे, जैसे अल्प जल में मछली  छटपटानें लगती है। वे यह भ्झी कहते है कि गड़ा हुआ बीज कभी भी पौधों के रूप में उग नहीं सकता। इसलिए वैसा अषीलवान भिक्षु सद्धर्म में उन्नति नहीं कर सकता। इसके विरीत जो शीलवान है वे जलाषय में मछली एवं अच्छे बीज के समान हैं।[15]

सव्वकामि स्थविर ने काम तृष्ण की उपमा मछली को फंसाये जाने वाले कांटे और बंदर को फंसाने वाले लेप से की है। तृष्णा वस्तुतः कांटे और लेप की तरह है। इन्हीं में आसक्त होकर लोग फेल जाते हैं अपने सर्वनाष का कारण बनते हैं।[16]

भूत थेर का प्रकृति वर्णन बहुत ही रमणीय है साथ ही अर्थपूर्ण एवं प्रेरणादायक थी। वे कहते है कि जब आकाष में मेघ की दुदुं भी बजती है और इतनी वर्षा होती है कि पक्षियों का सारा पथ जल धाराओं से आछन्न हो जाता है तो उस समय गहरे ध्यान में छुबकर आनन्द का अनुभव किया जातना अच्छा लगता है नदी के तट पर जब सुन्दर पुष्प खिले होते हैं वह असली प्रकृति का गोद है वहा बैठकर ध्यान का सुख बहुत होते है। उस समय न तो हाथियों के के गर्जन से भय लगता है न तो बादलों की गड़गडाहट से और न बिजली के कौंध से।[17]

काल्लुदेयि स्थविर ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से आध्यात्मिक बाते कहीं है। जब वे वृक्ष में खिले लाल–लाल पत्तों को देखते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है जैसे फल की प्राप्ति के लिए वृक्षों ने पत्तों को त्याग दिया है। पत्ते को त्यागने से पुष्प खिलते हैं और पुष्प के पश्चात् ही फल की प्राप्ति होती है यही क्रम आध्यात्मिक जीवन में भी रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मार्त्सय यदि दुर्गुणों को त्यागने से चित्त शान्त होता है और निर्वाण रूपी महाफल की प्राप्ति होती है। यहाँ त्याज्य दुर्गुणों की उपमा पत्तियों से और निर्वाण की उपमा फल से दी गयी है। जो बहुत

ही उचित मालुम पड़ता है। ऐसी उपमा की प्रेरणा उन्हें प्रकृति से ही मिली है वृक्षों न फल की खोज में पत्तों को त्याग दिया है। ऐसा सोचकर वृक्ष भी अपने अन्दर के दुर्गुणों को त्याग करने के लिए उद्धृत होते हैं। दुर्गुणों को त्यागने के बाद मनुष्य में भी उसी प्रकार की भांति चमक आ जाती है, जिस प्रकार वृक्षों की शोभा फूल खिलने से बढ़ जाती है।[18]

संकिच्च थेर ने भी हवा से उड़ते मेघ को देखकर ऐसा विचार अपनी गाथा में प्रकट किया है कि जैसे हवा, मेघों को उड़ा ले जाती है वैसे ही मेरे मन से काम वासनाएं विलुप्त हो जाती है। यहाँ काम वासना और कुविचार की उपमा बादल से और आध्यात्मिक पथ पर चलने की उपमा हवा से दी गयी है हवा में एक कवच शक्ति है उसी प्रकार आध्यात्म्कि विचार में भी कुवासनाओं को हटाने की उद्भुत शक्ति है संकिच्च थेर कहते है कि जब वर्षा ऋतृ में फफावात मेघों को उड़ा ले जाता है तब मेरा मन में निष्कामता से युक्त विचार उठते हैं।[19]

सोण थेर ने सम्यक् रूप से युक्त और शांत चित्त भिक्षु की उपमा ठोस पहाड़ से दी है। जिस तरह पहाड़ हवा से नहीं गिरता बिल्कुल अचल और अकम्पित रहता है, उसी तरह अरहतो भ्झी रूप, शब्द, गन्ध, रस स्पर्ष और इस्ट अनिष्ट धर्मो से डिग नहीं सकते। रेवत थेर ने भी वीत मोह भिक्षु की उपमा वे अचल तथा सुप्रतिष्ठित पर्वत से करते है जिस प्रकार शैल पर्वत अचल और सुप्रतिष्ठित है, उसी प्रकार जिस भिक्षु का मोह क्षय है, वह पर्वत की तरह विचलित नहीं होता।[20]

लाभ हानि, यथ–अपषय, निदा, प्रषंसा, दुख, सुख से जो प्रभावित नहीं होता वैसे वीत राग, वीतमोह और वीत द्वेष भिक्षु की उपमा कमल के पत्ते से दी गयी है, जो पानी में रहकर भी उससे निर्लिप्त बना रहता है।[21]

अञ्ञासिकोण्डञ्ञ की गाथाओं में से एक युक्तिपूर्ण उपमा है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार वायु से उठी धूल मेघ में शांत हो जाती है, उसी प्रकार प्रज्ञा से देखने पर मन के विचार शांत हो जाते हैं। उदायि स्थविर ने तो भिक्षुओं के समस्त गुणों की तुलना हाथी के सभी अंगों से की है। जैसे– शील, अहिंसा, स्मृति और जागरूकता– हाथी के चार पैर। ब्रह्म सूंड उपेक्षा उसके स्वेत दांत है।[22]

स्मृति ग्रीवा है प्रज्ञा सर है धर्म का चिन्तन सूंड से किसी बात को जांचना उसकी परीक्षा करनी है, धर्म निवास कुक्षि है और विवेक उसकी वाल भी पूछ है। इस तरह से जैसे हाथी अविचल भाव से चलता और रहता है उसी तरह से उपयुक्त गुणों से युक्त भिक्षु नाग की तरह ही स्थिर है।

तेल कानि स्थविर ने हवा से हिलती हुई पक्षी को देखकर एक बड़ी अच्छी बात कही है। वे कहते है कि हवा से पक्षी उसी तरह कांप रही है। जैसे अनुदृष्टियों से सिद्ध होकर कांप रहा हूँ जिस प्रकार पक्षियों को हवा में बिना कांपे गुजारा नहीं उसी तरह मनुष्य को भी तृष्णाओं से सिद्ध होकर सतत् कोपना ही पड़ता है, उसके सामने कोई और रास्ता नहीं है जिस प्रकार

पत्तियां असहाय होकर हवा के इषारे पर कांपती रहती है उसी तरह मनुष्य तृष्णाओं का दास होकर कांपता रहता है।[23]

अंगुलिमाल ने अप्रमादी की उपमा मेघ युक्त चन्द्रमा से की है जो पुण्य करनेवाला है, और जो बुद्ध शासन में संलग्न है वह इस लोक को उसी तरह प्रकाषित करता है जैसे मेघ से मुक्त चन्द्रमा। मेघ से ग्रसित चन्द्रमा का प्रकाष बिल्कुल लुप्त हो जाता है लेकिन जब अच्छादित मेघ से मुक्त चन्द्रमा प्रकाष देता है तो उकसा प्रकाष कोमल एवं शीतल होता है।[24]

सारिपुत्र ने अपनी गाथा में कहा है कि जिस भिक्षु का मोह नष्ट हो जाता है, वह पर्वत की भांति अचल और सुप्रतिष्ठित रहता है। उन्होंने यह भी कहा है कि जो पुरूष आसक्ति रहित है और नित्यप्रति पवित्रता की खोज में रहता है। उसको बाल का सिरा जितना पाप भी बादल की तरह विषाल दिखलाई पड़ता है यह उपमा भी बहुत ही उपयुक्त है।[25]

इस प्रकार हम देखते हैं कि थेर गाथा की उपामाएं विषयानुकुल हैं और जिस प्रकार इसका विषय उद्यात है, उसी प्रकार उपमाएं भी सर्वदा उद्यात और औचित्यपूर्ण हैं। इस प्रकार प्रकृति साधकों को शांति प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं या साधकों का शांत चित प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन करता है। उसके शांति में सहायक होते हैं। थेरगाथा में बहुत से स्थविरों ने अरण्यवास और एकान्तवास की महिमा का गुणगान किया है। इस प्रकार प्रकृति से अनुक उपादान लेकर अपने अनुभवों का अभिव्यक्तिकरण करते हैं। इन उपमाओं के माध्यम से वे यही व्यक्ति करना चाहते हैं कि कैसे उनका जीवन पवित्र और सुखमय हो गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के उपादानों के माध्यम से उन्होंने अपने जीवन में जो सुख और शान्ति की अनुभूति की है उसका शांगोपांग वर्णन थेर गाथा में किया गया है।

**संदर्भ ग्रंथ :**


1. कस्सप, जगदीष, थेरगाथा पालि, बिहार राजकीयेन पालिकासनमण्डलेन, 1959, पृ॰—5।
2. उपाध्याय, भरत सिंह, पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, 2002, पृ॰ 305।
3. वही, पृ॰ 255।
4. वही।
5. ''कुरी मेरी छाई है, सुखदाई है, वायु से सुरक्षित है, दे मन भर बरसो। मेरी चित्त अच्छी तरह समाधिस्थ है, विमुक्त है, उद्योगी है विहार करता हुँ, देव मन भर वरसो''
6. 'नन्दन्ति मोरा सुसिखा सुपेलुणा सुनील गीवा सुमुखा सुगज्जिनी।
   सुसघला चा पि महा मही अयं सुव्यापिम्बु सुवलाहकं नमं।।

सुकल्लरूपो सुमनस्स फायितं सुनिक्खमो साधु सुबुद्धसासने।
सुसुक्कसुक्कं निपुणं सुदुद्यसं फुसाहितं उत्तममच्युतपदं।।

7. थेरगाथा अट्टकथा, दुतियो भागो, विपष्यना विषोधन विन्यास, इगतपुरी, 1998, पृ॰–33।
8. थेरगाथा अट्टकथा, विपष्यना विषोधन विन्यास, इगतपुरी, 1998, पृ॰–28।
9. वही, पृ॰–59।
10. वही, पृ॰–80।
11. वही, पृ॰–95।
12. वही, पृ॰–127।
13. वही, पृ॰–234।
14. वही, दुतियो भागो, पृ॰–26।
15. वही, पृ॰–247।
16. वही, दुतियो भागो, पृ॰–103।
17. वही।
18. वही, पृ॰–14।
19. वही, दुतियो भागो, पृ॰–181।
20. वही, पृ॰–344।
21. वही।
22. वही।
23. वही, दुतियो भागो, पृ॰–238।
24. वही, दुतियो भागो, पृ॰–275।
25. वही, दुतियो भागो, पृ॰–314।

!!!!!!!!!!!!!